अध्याय
2

सवा सेर गेहूँ

मुंशी प्रेमचंद

किसी गाँव में शंकर नाम का एक किसान रहता था। सीधा सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम ,न किसी से लेने में, न किसी के देने में । छक्का –पंजा न जानता था, छल प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठगविद्या न जानता था , भोजन मिला, खा लिया ,न मिला ,चबैने पर काट दी, चबैना भी न मिला , तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो उसे इस निवृत्ति मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेषकर जब साधु–महात्मा पदार्पण करते थे, तो उसे अनिवार्यत: सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था, पर साधु को कैसे भूखा सुलाता, भगवान के भक्त जो ठहरे।

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर, संपूर्ण वेष महात्माओं का–सा था। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता। प्राचीनकाल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिन्ता हुई, महात्माजी को क्या खिलाऊँ? आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाऊँ, पर गाँव–भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य–ही–मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य पदार्थ कैसे मिलता। सौभाग्य से गाँव के महाराज के वहाँ से थोड़े–से गेहूँ मिल गए। उनसे सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा ने भोजन किया, प्रात:काल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

महाराज साल में दो बार खलिहानी लिया करते थे। शंकर ने दिल में कहा, सवा सेर गेहूँ इन्हें क्या लौटाऊँ, पंसेरी बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूँगा,यह भी समझ जाएँगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब महाराज पहुँचे तो उन्हें डेढ़ पंसेरी के लगभग गेहूँ दे दिया और अपने को उऋण समझ कर उसकी कोई चर्चा न की। महाराज ने फिर कभी न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। सात साल गुजर गए। महाराज से महाजन हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गए थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाए, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग–अलग चूल्हे जले, वह फूट फूटकर रोया। आज से भाई–भाई शत्रु हो जाएँगे। एक रोएगा, दूसरा हँसेगा। एक के घर मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगें। प्रेम का बंधन,खून का बंधन ,दूध का बंधन आज टूटा जाता है। उसने भगीरथ परिश्रम से कुल मर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसको जड़ से उखड़ता देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत तक न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेटकर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त को जला दिया, मांस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों खाट से न उठा । अब गुजर–बसर कैसे हो? पाँच बीघे के आधे रह गए, एक बैल रह गया, खेती केवल मर्यादा–रक्षा का साधन मात्र रह गई, जीविका का

भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गए, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा, तो राह में महाराज ने टोककर कहा–शंकर ,कल आकर के अपने बीज–बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब के बाकी पड़े हुए है, और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?

शंकर ने चकित होकर कहा– मैने तुमसे कब गेहूँ लिए थे जो साढ़े पाँच मन हो गए? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का छटाँक भर न अनाज है, न एक पैसा उधार।

महाराज–इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नही जुड़ता।

यह कहकर महाराज जी ने उस सवा सेर गेहूँ का जिक्र किया, जो आज से सात वर्ष पहले शंकर को दिए थे। शंकर सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर, मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन सा काम किया? इतना स्वार्थ! सवा सेर अनाज को अंडे की भांति सेकर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल ही जाएगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेहूँ तौलकर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप साधे बैठे रहे? बोला–महाराज ,नाम लेकर तो मैने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानों सेर–सेर, दो सेर दिया है। अब आप आज साढ़े पाँच मन माँगते हैं, मैं कहाँ से दूँगा?

महाराज– लेखा जौ –जौ, बखसीस सौ– सौ , तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं, चाहे एक ही जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है; जिससे चाहे हिसाब लगवा लो। दे दो तुम्हारा नाम छेक दूँ ,नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर–क्यों एक गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूँ किसके घर से लाऊँगा?

महाराज– जिसके घर से चाहे लाओ, मैं छटाँक –भर भी न छोड़ूँगा, यहाँ न दोगे ,भगवान के घर तो दोगे।

शंकर काँप उठा। हम पढ़े लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात हैं, हाँ ईश्वर के घर ही देंगे, वहाँ भी तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं। फिर उसकी क्या चिन्ता किन्तु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार –चतुर न था। बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस ख्याल ही से उसे रोमांच हो गया। बोला–महाराज , तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दूँ ,इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ , उस जनम के लिए क्यों काँटे बोऊँ? मगर यह कोई न्याय नहीं। तुमने राई का पर्वत बना दिया, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता। मै तो दे दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।

महाराज– वहाँ का डर तुम्हें होगा,मुझे क्यों होने लगा।

शंकर–मेरे पास रक्खा तो है नहीं, किसी से माँग–जाँचकर लाऊँगा तभी न दूँगा!

महाराज–मैं यह न मानूँगा। सात साल हो गए, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेहूँ नहीं दे सकते , तो दस्तावेज लिख दो।

शंकर– मुझे तो देना है, चाहे गेहूँ लो चाहे दस्तावेज लिखाओ, किस हिसाब से दाम रखोगे?

महाराज–बाजार भाव पाँच सेर का है, तुम्हें सवा पाँच सेर का काट दूँगा।

शंकर– जब दे ही रहा हूँ तो बाजार भाव काटूँगा, पाव–भर छुड़ाकर क्यों दोषी बनूँ।

हिसाब लगाया तो गेहूँ के दाम साठ रूपये हुए। साठ रूपए का दस्तावेज लिखा गया, तीन रुपये सैकड़े सूद। सालभर में न देने पर सूद की दर दो सौ ग्यारह रूपये सैकड़े । ग्यारह रूपए का स्टाम्प, एक रूपया दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँव भर ने महाराज की निन्दा की, लेकिन मुँह पर नहीं। महाजन से सभी का काम पड़ता है, उसके मुँह कौन आए।

शंकर ने सालभर तक कठिन तपस्या की। मियाद के पहले रुपये अदा करने का उसने व्रत–सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबैने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ। केवल लड़के के लिए रात को रोटियाँ रख दी जाती। पैसे रोज का तंबाकू पी जाता था, यही एक व्यसन था जिसका वह कभी न त्याग कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत की भेंट हो गया। उसने चिलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तमाखू की हांडी चूर–चूर कर डाली। कपड़े पहले भी त्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गये। शिशिर की अस्थिबेधक शीत को उसने आग तापकर काट दिया। इस ध्रुव–संकल्प का फल आशा से बढ़कर निकला। साल के अंत में उसके पास साठ रुपये जमा हो गये। उसने समझा इतने रुपये दे दूँगा और कहूँगा महाराज, बाकी रुपये भी जल्द ही आपके सामने हाजिर करूँगा। पन्द्रह रुपये की तो और बात है, क्या महाराज इतना भी न मानेंगे! उसने रुपये लिये और ले जाकर महाराज के चरण–कमल पर अर्पण कर दिए। महाराज ने विस्मित होकर पूछा–किसी से उधार लिए क्या?

शंकर– नहीं महाराज, आपके असीस से ही अबकी मजूरी अच्छी मिली।

महाराज–लेकिन, यह तो साठ रुपये ही है।

शंकर –हाँ महाराज, इतने अभी ले लीजिए, बाकी दो–तीन महीने में दे दूँगा, मुझे उरिन कर दीजिए।

महाराज– उरिन तो जभी होगे जब कि मेरी कौड़ी–कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे पन्द्रह रुपये और लाओ।

शंकर–महाराज,इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का भी ठिकाना नही है, गाँव में हूँ तो कभी न कभी दे ही दूँगा।

महाराज– मैं यह रोग नहीं पालता, न बहुत बातें करना जानता हूँ। मगर मेरे पूरे रुपये सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रुपये चाहे अपने घर में रखो, चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ।

शंकर–अच्छा जितना लाया हूँ उतना रख लीजिए। मै जाता हूँ, कहीं से पन्द्रह रुपये और लाने की फिक्र करता हूँ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा,मगर किसी ने रुपये न दिए, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रुपये न थे, बल्कि इसलिए कि महाराज के शिकार को छेड़ने की किसी की हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात् प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर भी जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणित हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल भर में साठ रुपये से अधिक न जमा कर सका, तो अब और कौन सा उपाय है जिसके द्वारा इसके दूने रुपये

जमा हो। जब सिर पर ऋण का बोझ ही लादना है तो क्या मन- भर का और क्या सवा- मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गयी। आशा उत्साह की जननी है, आशा मे तेज है , बल है , जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह जरूरतें जिनको उसने साल-भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचनियाँ थी, जो अपनी भेंट लिए बिना जान नहीं छोड़ती। कपड़ों में चकत्तियों के लगने की भी एक सीमा होती है । अब वह रुपये जमा न करता, कभी कपड़े लाता, कभी खाने की कोई वस्तु। उसे अब रुपये अदा करने की कोई चिंता न थी मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा भी नही आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी ,पर वह काम करने अवश्य जाता था। अब काम पर न जाने के लिए बहाना खोजा करता।

इस भाँति तीन वर्ष निकल गए। महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार को चौंकाना उनकी नीति के विरूद्ध था।

एक दिन महाराज ने शंकर को बुलाकर हिसाब दिखाया। साठ रुपये जमा थे। अब भी शंकर के जिम्मे एक सौ बीस रुपये निकले।

शंकर- इतने रुपये तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

महाराज-मैं इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही ,सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर- एक बैल है, वह ले लीजिए, और मेरे पास रखा क्या है।

महाराज- मुझे बैल-बधिया लेकर क्या करना है । मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर- और क्या है महाराज?

महाराज-कुछ नहीं, तुम तो हो। आखिर तुम भी मजूरी करने जाते ही हो, मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना ही पड़ता है। सूद में तुम हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुविधा हो मूल को दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते जब तक मेरे रुपये नहीं चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस एतबार पर छोड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे। और कहीं कमाकर जब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे।

शंकर-महाराज,सूद में तो काम करूँगा और खाऊँगा क्या?

महाराज-तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पाँव कटाके बैठेंगे। तुम्हें आध सेर जौ रोज कलेवा के लिए दे दिया करूँगा। ओढ़ने को साल में एक कम्बल पा जाओगे , एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा, और क्या चाहिए। यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं हैं, मैं तो तुम्हें रुपये भरने के लिए रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिन्ता में पड़े रहने के बाद कहा-महाराज यह तो जन्म-भर की गुलामी हुई।

महाराज-गुलामी समझो, चाहे मजूरी समझो। मैं अपने रुपये भराए बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की बात दूसरी है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता, कहीं शरण न थी, भागकर कहाँ जाता, दूसरे दिन से अपने महाराज के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। सवा सेर गेहूँ के बदौलत उम्र-भर के लिए गुलामी की बेड़ी

पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था तो यह था कि यह मेरे पूर्व- जन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किए थे; बच्चे दानों को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। वह गेहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति यावज्जीवन उसके सिर से न उतरे।

शंकर ने महाराज के यहाँ बीस वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। एक सौ बीस रुपये अभी तक उसके सिर पर सवार थे। महाराज ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा । इतने अन्यायी , इतने निर्दयी न थे। उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी। आज तक वह महाराज के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा; होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जाने।

पाठक इस वृतांत को कपोल कल्पित न समझिए । यह सत्य घटना है । ऐसे शंकरों और ऐसे महाराजों से दुनिया खाली नहीं है।

अभ्यास

1. सवा सेर गेहूँ उधार लेने के बाद शंकर को क्या-क्या कष्ट सहने पड़े?
2. 'महाराज' के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।
3. 'शंकर एक गरीब किसान होते हुए भी समस्याओं से कभी घबराता नहीं था।' उदाहरण देकर समझाइए।
4. 'यह कहानी प्राचीन भारत में किसानों के होने वाले शोषण को उजागर करती है' । इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
5. प्रस्तुत कहानी में आपको किस पात्र ने अधिक प्रभावित किया है? और क्यों? लिखिए।
6. 'सवा सेर गेहूँ ' कहानी के आधार पर शंकर का चरित्र चित्रण कीजिए।

योग्यता विस्तार

1. आपके आसपास शंकर और महाराज जैसे व्यक्ति हो सकते हैं। आप शंकर को महाराज से बचाने के लिए क्या उपाय करेंगे?
2. महाराज नें शंकर के समक्ष अनेक मुसीबतें खड़ी कर दी थीं। यदि आप महाराज के स्थान पर होते तो क्या करते?
3. 'सवा सेर गेहूँ ' कहानी का नाट्य रूपान्तर करके विद्यालय में किसी अवसर पर इसका अभिनय कीजिए।
4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य की सामाजिक ,आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप शंकर पर केन्द्रित कहानी लिखिए।
5. शंकर जैसे भूमिहीन, बंधुआ मजदूर वर्ग के लोगों को कौन-कौन सी सुविधाएँ उपलब्ध हैं? पता करके लिखिए।

***